

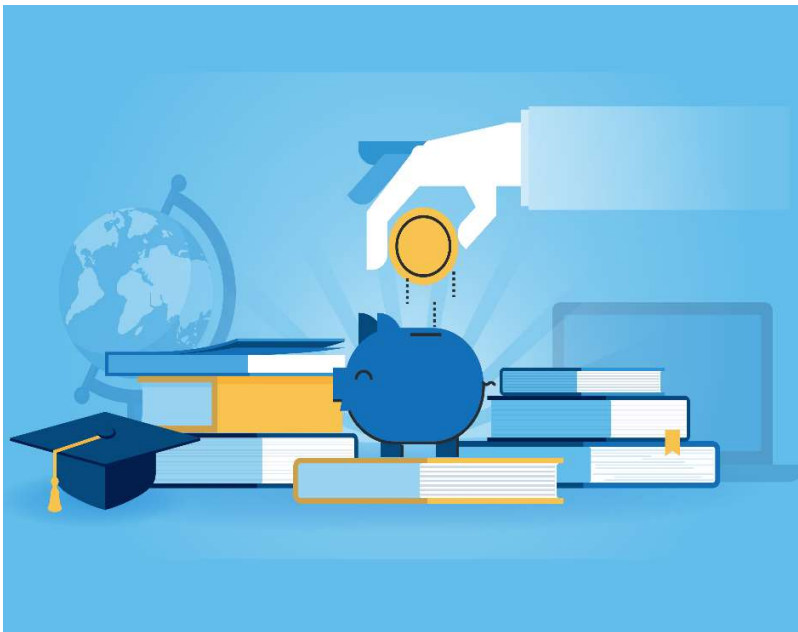


Date:06-09-22

Funding public education

The idea that higher education could be funded fully by students or their parents is grossly misplaced.

Furqan Qamar, [A professor in the faculty of management studies of Jamia Millia Islamia, is a former Adviser for education in the Planning Commission.]



A few days before India celebrated the 75th year of Independence, Union Minister of Education Dharmendra Pradhan said in reply to a debate in the Lok Sabha that people should let go of the idea that universities must be funded only by the government. His remarks are only a corollary to the General Financial Rules of 2017, which encourage all autonomous bodies to maximise generation of internal resources and attain self-sufficiency (Rule 229(iv)). Still, the Minister's remarks shocked many, for only a week earlier, while launching education and skill development-related initiatives to mark two years of the launch of the National Education Policy (NEP), Home Minister Amit Shah had said that the public

education system is the basis of a vibrant democratic society.

The National Education Policy's vision

The NEP 2020 envisaged that it would “promote increased access, equity, and inclusion through a range of measures, including greater opportunities for outstanding public education.” It also provided an assurance that the autonomy of public institutions would be backed by adequate public funding. The NEP noted that public expenditure on education in India was nowhere close to the 6% of GDP envisaged by the 1968 policy, reiterated in the 1986 policy, and reaffirmed in the 1992 review of the policy. Against this backdrop, it was gratifying that the 2020 policy endorsed a substantial increase in public investment by the Central and State governments to reach 6% of GDP at the earliest. Elaborating on the reasons, NEP 2020 said this level of public funding was “extremely critical for achieving the high-quality and equitable public education system that is truly needed for India’s future economic, social, cultural, intellectual progress and growth.”

Going by the National Education Commission, also known as the Kothari Commission, which was the precursor to the 1968 policy, higher education should have been getting at least 2% of GDP. In contrast, the expenditure on higher education by the Centre and the States taken together nosedived from 0.86% of GDP in 2010-11 to a measly 0.52% in 2019-20 (Budget Estimates, or BE). It is disquieting that the Centre's expenditure on higher education dropped from 0.33% of GDP in 2010-11 to a mere 0.16% in 2019-20 (BE). The decline in public investment in higher education does not appear due to the fall in the receipts of the Central government. The revenue receipt of the Union government went up three times from ₹7.51 lakh crore in 2011-12 to ₹22.04 lakh crore in 2022-23 (BE). So have total receipts, from ₹13.07 lakh crores in 2011-12 to ₹39.44 lakh crore in 2022-23 (BE). In contrast, the Union government's expenditure on higher education as a percentage of revenue receipt saw a decline from 2.60% in 2011-12 to 1.85% in 2022-23 (BE). As a percentage of the total receipt, the allocation for higher education fell from 1.49% to 1.04% during the corresponding period.

Consequence of privatisation

Higher education in India is already highly privatised. Most private higher education institutions are run on a self-financed basis, a euphemism for full cost-recovering institutions. Besides, private tendencies have also penetrated deeply into public higher education. The thrust for resource mobilisation, internal revenue generation, cross-subsidisation, resource use efficiency, cost reduction, accelerated cost recovery and enhanced user charges may further exacerbate the trend. The most obvious consequence would be a substantial increase in fees and other charges from students. The idea that higher education could be funded fully by the students or their parents out of their savings or through bank borrowings appears grossly misplaced in the Indian context.

The NEP 2020 envisages enrolment in higher education to be nearly double by 2035. Considering the fact that the social and economic elites, the rich and the affluent, have already crossed a gross enrolment ratio of 100%, the future growth in higher education has to come from the socio-economically disadvantaged groups. Would these people be able to afford full-cost recovery from their higher education institutions?

Disputes about the levels of poverty apart, it is now a reality that 62.5% of our population have to be provided free ration to save them from destitution. No nation would want to deprive such a vast section of accessing higher education. Higher education in India may have had its failings, but it has served the nation rather well. It has played a critical role in sustaining the \$2.8 trillion economy that India has become today. But for enhanced investment in higher education, our vision of a \$5 trillion economy and the aspiration of becoming a high-income developed country could be jeopardised.



दैनिक भास्कर

Date: 06-09-22

जीडीपी के साथ बाकी पैमानों में भी सुधार हो

संपादकीय

भारत आखिरकार अपने ऊपर दो सौ वर्ष तक शासन करने वाले ब्रिटेन को पीछे छोड़कर सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी (अर्थव्यवस्था का आयतन) में पांचवे स्थान पर आ ही गया। लेकिन क्या यह वाकई खुशी मनाने का सबब हो सकता है जब देश के दस में से नौ नवजात न्यूनतम स्वीकार्य पोषक तत्वों से वंचित हों? अगर इसी जीडीपी के आधार पर निकाली जाने वाली प्रति-व्यक्ति आय (जो आमतौर पर व्यक्ति की आर्थिक खुशहाली का पैरामीटर है) के पैमाने पर देखें तो भारत आज भी ब्रिटेन से कोसों पीछे है। इन सबसे अलग दूसरी चिंता की बात है कि मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) में हम 188 देशों में पिछले 32 वर्षों से 130-135 के बीच यानी बेहद गरीब सब-सहारा अफ्रीकी देशों के अगल-बगल खड़े दिखाई देते हैं। कुल मिलाकर हमें अपनी प्राथमिकता में केवल जीडीपी का साइज बढ़ाने पर ही सारा ध्यान नहीं लगाना चाहिए, इसके साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक विकास का लाभ समान रूप से बांटना भी जरूरी होना चाहिए। देश में जिनी कोफिशिएंट पैमाने (गुणांक) पर गरीब-अमीर की खाई लगातार बढ़ती जा रही है, यानी आर्थिक विकास का लाभ कुछ हाथों में सिमटता जा रहा है। अगर देश का कोई उद्योगपति दुनिया में तीसरा स्थान हासिल करता है तो उससे कुपोषण की समस्या हल नहीं होती या बेरोजगारी पर अंकुश नहीं लग सकता। हालांकि सरकार ने सस्ते और फ्री अनाज की तमाम योजनाएं शुरू की हैं, लेकिन अभी भी शिशु के स्वास्थ्य को लेकर अपेक्षित सुधार नहीं हुआ और शिक्षा पर व्यय भी सीमित है। डेमोग्राफिक डिविडेंड (बढ़ती युवा शक्ति) के लाभ के लिए यह सुधार तत्काल करने होंगे।

Date:06-09-22

अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करेगा भारत का नेट जीरो होना

आरती खोसला, (निदेशक, क्लाइमेट ट्रेड्स)



भारत जलवायु-संबंधित अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा करके और उन्हें बढ़ाकर वित्त संबंधी जोखिमों को खत्म कर सकता है और स्वच्छ ऊर्जा में रूपांतरण को बहुत बेहतर बना सकता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने नवंबर 2021 में ऐलान किया था कि हिंदुस्तान 2070 तक नेट जीरो के लक्ष्य को हासिल कर लेगा। उन्होंने वर्ष 2030 तक के भारत के लक्ष्यों को भी मजबूत किया। भारत ने हाल ही में इन लक्ष्यों के एक हिस्से को संयुक्त राष्ट्र की प्रक्रिया के तहत जल्द ही औपचारिक रूप देने की मंजूरी दी है। नए मॉडल्स दिखाते हैं कि भारत के वर्ष 2070 तक नेट जीरो का लक्ष्य हासिल करने से वर्ष 2036 तक सालाना जीडीपी में वृद्धि होगी और वर्ष 2047 तक रोजगार के डेढ़ करोड़ नए अवसर पैदा होंगे। वहीं

उत्सर्जन के वर्ष 2030 तक चरम पर पहुंचने की संभावना है।

इसके अलावा खासकर अक्षय ऊर्जा और विद्युतीकरण में तेजी लाने की नीतियों से नेट जीरो के लक्ष्य को इस सदी के मध्य तक संभव बनाया जा सकता है। वर्ष 2023 तक नई कोयला आधारित परियोजनाओं की समाप्ति और कोयले की बेरोकटोक आपूर्ति को वर्ष 2040 तक छोड़कर नए विकल्प अपनाने से खास तौर पर इस सदी के मध्य के करीब नेट जीरो का लक्ष्य हासिल करने के लिहाज से प्रभाव पड़ेगा। वर्ष 2050 तक नेट जीरो का लक्ष्य हासिल करने से और ज्यादा लाभ मिलेंगे। इससे सालाना जीडीपी में बढ़ोतरी होगी और वर्ष 2020 तक रोजगार के 2 करोड़ नए अवसर पैदा होंगे। अतिरिक्त वित्त की व्यवस्था होने से मौजूदा संसाधनों को मुक्त किया जा सकेगा ताकि उनकी मदद से गरीबी तथा अधिक कर की समस्या से निपटा जा सके और श्रमिकों को फिर से कार्यकुशल बनाए जाने के साथ-साथ न्यायसंगत रूपांतरण को सुनिश्चित किया जा सके। एक ताजा अध्ययन- गेटिंग इंडिया टु नेट जीरो रिपोर्ट के मुताबिक प्रदूषणकारी तत्वों के उत्सर्जन को शून्य करने से भारत की अर्थव्यवस्था को नई ताकत मिल सकती है और रोजगार के लाखों नए अवसर उत्पन्न हो सकते हैं। खास तौर पर अगर जीवाश्म ईंधन पर आधारित समुदायों के लिए न्यायसंगत रूपांतरण सुनिश्चित करने के मकसद से वित्त की अतिरिक्त व्यवस्था और सुगठित नीतियों का सहारा मिले तो यह काम बेहतर ढंग से किया जा सकता है।

इस ताजा रिपोर्ट में पाया गया है कि स्वच्छ ऊर्जा में रूपांतरण की प्रक्रिया को अभी से शुरू किया जाना यह तय करने के लिहाज से महत्वपूर्ण होगा कि भारत कब नेट जीरो उत्सर्जन का लक्ष्य हासिल करेगा और उसे इसका कितना फायदा होगा। रिपोर्ट में नए शोध और मॉडलिंग को शामिल किया गया है। अतिरिक्त सामाजिक नीतियों और निवेश, जैसे कि श्रमिकों को फिर से कुशल बनाने और उनकी कार्यकुशलता को बेहतर बनाने से यह सुनिश्चित होगा कि इस रूपांतरण के लाभ का दायरा पूरे देश में फैले। भारत की नेट जीरो संबंधी आकांक्षाएं न सिर्फ जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध वैश्विक लड़ाई के लिहाज से महत्वपूर्ण हैं बल्कि भारत के सतत और समावेशी विकास के लिए भी वरदान साबित हो सकती हैं। अगर इन्हें इस तरह से व्यापक और सुगठित योजना के जरिए पूरा किया जाए, जिससे अतिरिक्त निवेश आकर्षित हो और उन लोगों के लिए न्यायसंगत रूपांतरण सुनिश्चित हो सके, जो जीवाश्म ईंधन पर सबसे ज्यादा निर्भर करते हैं, तो भारत का नेट जीरो मार्ग रोजगार के नए अवसर पैदा कर सकता है।



दैनिक जागरण

Date:06-09-22

संबंधों को नया आयाम देने का अवसर

ब्रिगेडियर आरपी सिंह, (लेखक सेवानिवृत्त सैन्य अधिकारी हैं और बांग्लादेश मुक्ति संग्राम का हिस्सा रहे हैं)

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना का चार दिवसीय भारत दौरा आरंभ हो गया है। भारत-बांग्लादेश के संबंध बहुत विशिष्ट हैं, क्योंकि बांग्लादेश के स्वतंत्र अस्तित्व में भारत की निर्णायक भूमिका रही। स्वयं मुझे बांग्लादेश के मुक्ति

संग्राम में सेवा देने का अवसर मिला। उस वक्त की तमाम यादें मेरे जेहन में आज भी जिंदा हैं। मुझे भलीभांति याद है कि कैसे दोनों पक्षों के सैनिकों ने नए राष्ट्र के सृजन में अपना रक्त बहाया था। कई बार तो यही पहचान में नहीं आता था कि बलिदानी सैनिक भारतीय है या बांग्लादेशी। हम लोग न केवल उस आततायी के विरुद्ध लड़े, जिसने सभी मानवीय मूल्यों को तिलांजलि दे दी थी, बल्कि हमारा संघर्ष भावी पीढ़ी की समृद्धि को सुनिश्चित करने से भी जुड़ा था। 51 साल पहले दोनों देशों के बीच सीमा की वह रेखा धुंधली पड़ गई थी, जब बांग्लादेश (तब पूर्वी पाकिस्तान) में सताए जा रहे लाखों लोगों के लिए भारत ने अपने दरवाजे खोल दिए थे। भारत उस समय गरीब देश ही था, लेकिन इसके बावजूद उसने इंसानियत और बड़ा दिल दिखाया। भारतीय सेना के मन में कभी ऐसा भाव नहीं आया कि बांग्लादेशी सेना या मुक्ति वाहिनी किसी और देश से जुड़ी है और हमें कभी अहसास नहीं हुआ कि हम किसी दूसरे देश के लिए लड़ रहे हैं। मात्र 12 दिनों की लड़ाई में हमने पाकिस्तानियों के हौसले पस्त करके उन्हें हमेशा के लिए एक ऐसी टीस दी, जिसे वे चाहकर भी नहीं भुला पाते।

बीते पांच दशक में कुछ समय के लिए अपवाद को छोड़ दिया जाए तो बांग्लादेश का झुकाव भारत की ओर रहा है। दोनों देशों ने इस दौरान काफी कुछ हासिल किया है। बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना के परिवार ने अपनी मातृभूमि के लिए इतना बड़ा बलिदान दिया है, जिसकी मुश्किल से ही दूसरी मिसाल मिलेगी। हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी अपने राष्ट्र के लिए पारिवारिक जीवन का परित्याग कर दिया। इसीलिए मुक्ति संग्राम के हमारे जैसे वेटरंस की आकांक्षाओं की पूर्ति के दृष्टिकोण से दोनों ही आदर्श राष्ट्रप्रमुख हैं। बतौर प्रधानमंत्री मोदी का कार्यकाल इस मामले में निराश भी नहीं करता। मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद से द्विपक्षीय रिश्ते और परवान चढ़े हैं, जिनमें कई अहम उपलब्धियां भी हासिल हुईं। मोदी सरकार ने बांग्लादेश के साथ दशकों पुराने सीमा विवाद को सुलझा लिया। वहीं बांग्लादेश ने भी अपने देश में भारत-विरोधी तत्वों पर करारा प्रहार किया, जिससे पूर्वोत्तर राज्यों में अलगाववाद की आग बड़ी हद तक बुझी है। दोनों देशों के बीच रेल, सड़क, जल परिवहन, पाइपलाइन और बिजली ट्रांसमिशन लाइंस जैसी सुविधाओं के विस्तार के लिए मजबूत संभावनाएं बनी हैं। यह न केवल बांग्लादेश, बल्कि पूर्वोत्तर के हमारे राज्यों की प्रगति के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनकी आर्थिक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक रूप से एक दूसरे से जुड़ी हुई है। दोनों देशों ने आपसी सहयोग से कोविड-19 महामारी संकट का सामना भी कुशलतापूर्वक किया। इसके बावजूद द्विपक्षीय मोर्चे पर कुछ छोटी-बड़ी चुनौतियां कायम हैं। दोनों नेताओं को इस दिशा में तात्कालिक रूप से कदम उठाने होंगे। जैसे कि बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली बांग्लादेश की तमाम नदियों का पानी दोनों देशों के एक बड़े इलाके में बाढ़ की विभीषिका का कारण बनता है। ऐसे में उन पर छोटे बांध बनाए जाने के विकल्प पर विचार किया जाए। इससे संरक्षित पानी और बड़े पैमाने पर बनने वाली बिजली अंतरराष्ट्रीय सीमा के दोनों ओर तमाम लोगों का भला करेगी। सीमा पर कभी-कभार होने वाली मारा-मारी के साथ ही अवैध घुसपैठ की समस्या द्विपक्षीय रिश्तों में बड़ी बाधा के रूप में कायम है, जिसे दूर करना होगा। इसके साथ ही दोनों देश ऐसे क्षेत्रों को चिह्नित करें, जहां मेक इन इंडिया और बांग्लादेश के मामले में सहयोग किया जा सके। अवैध घुसपैठ रोकने के लिए दोनों देशों के सभी नागरिकों की बायोमीट्रिक पहचान का काम तेजी से करना होगा। सीमा सुरक्षा बल यानी बीएसएफ को अपना मानवीय दृष्टिकोण कायम रखना चाहिए। यदि उन्हें कुछ गड़बड़ लगे तो वे आधुनिक तकनीक के माध्यम से उसकी पड़ताल करें और लोगों की पहचान कर उन्हें वापस भेजें। सीमावर्ती इलाकों का संयुक्त रूप से त्वरित विकास करना होगा। सीमा पर होने वाले अपराधों को रोकने के लिए संयुक्त तंत्र को और प्रभावी बनाना होगा। मीडिया और नेताओं को भी एक दूसरे से जुड़े तनातनी वाले मुद्दों पर आक्रामक भाषा से परहेज करना चाहिए।

हमें अपने अतीत को भी साझा करना होगा। याद रहे कि आपरेशन जैकपाट के अंतर्गत मुक्ति वाहिनी के एक लाख से अधिक कैडरों को भारत द्वारा सात शिविरों में प्रशिक्षित किया गया था। उन्हीं में से एक मूर्ति कैंप भी शामिल था, जहां अक्वल दर्जे के अधिकारियों को प्रशिक्षित किया गया। उनमें बलिदानी कैप्टन शेख कमाल भी शामिल थे। वह प्रधानमंत्री शेख हसीना के भाई थे, जिनकी प्रशिक्षण प्रक्रिया से मेरा प्रत्यक्ष जुड़ाव रहा। दुर्भाग्य की बात है कि मुक्ति संग्राम में मूर्ति कैंप की भूमिका से भारत में गिनती के लोग ही अवगत होंगे, जबकि बांग्लादेश में अंग्रेजी एवं बांग्ला के वृत्तांतों में उसका संदर्भ तो मिलता है, पर उसकी व्यापक चर्चा अपेक्षित अनुपात में न हो पाई। इसलिए उसकी स्मृति में एक स्मारक अवश्य बनाया जाना चाहिए।

उस युद्ध में शामिल हम सभी सैनिकों पर अब उम्र हावी हो रही है। कुछ समय बाद मुक्ति योद्धाओं की सिर्फ स्मृतियां ही शेष रह जाएंगी। उनके जाने से मूल्यवान सूचनाएं भी काल-कवलित हो जाएंगी। इसलिए ऐतिहासिक तथ्यों के आलोक में समग्र घटनाक्रम का नीर-क्षीर विश्लेषण किया जाए। किताबों, टीवी धारावाहिकों और फिल्मों के माध्यम से उनकी कहानी भारत, बांग्लादेश और पाकिस्तान तक सुनाई जाए। अफसोस की बात है कि तमाम घटनाओं को लेकर भारतीयों और बांग्लादेशियों में ही मतैक्य नहीं है। ऐसे में एक साझा आधिकारिक इतिहास की सृष्टि की आवश्यकता महसूस होती है। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों को इन सभी पहलुओं पर विचार करना चाहिए।
